संपादकीय

पाठ्यचर्या निर्माण की कदमताल

सन् 2000 की राष्ट्रीय पाठ्यचर्या से उत्पन्न बहस, मौजूदा शैक्षिक प्रक्रियाओं के प्रति गहरे असंतोष से उत्पन्न अकुलाहट और एक दृष्टि संपन्न नेतृत्व ने नवीन शैक्षिक दृष्टि से युक्त राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के दस्तावेज को जन्म दिया। इस दस्तावेज की खासियत सिर्फ नवीन शैक्षिक दृष्टि ही नहीं है बल्कि पाठ्यचर्या निर्माण की सघन लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं की स्थापना का प्रयास भी है। इसने पाठ्यचर्या निर्माण में व्यापक भागीदारी, लम्बा एवं सघन विचार विमर्श, संवैधानिक मूल्यों में प्रतिबद्धता, सीखने के अद्यतन सिद्धान्त और दूरगामी सामाजिक दृष्टि आदि को समाहित करते हुए पाठ्यचर्या निर्माण के लोकतांत्रिक मूल्यों को स्थापित किया है। स्कूलों में चल रही परंपरागत शिक्षा प्रक्रियाओं से उकताहट महसूस करने वाले आमजन, शिक्षा व्यवस्था में परिवर्तन की संभावना के प्रति हौसला खोते माता-पिताओं, अभिभावकों और शिक्षाकर्म में रत उन सभी लोगों ने, जो बच्चों के जीवन के लिए सार्थक शैक्षिक अुनभव की तलाश में थे, इस पाठ्यचर्या का स्वागत किया और इसे परिवर्तन की दिशा में उम्मीद की नजर से देखा।

केन्द्र में चली इस बहस का असर किसी हद तक राज्यों पर भी हुआ। हालांकि केन्द्र स्तर पर नई पाठ्यचर्या का आना राज्यों को पाठ्यचर्या नवीनीकरण के लिए बाध्य नहीं करता। अर्थात् यह आवश्यक नहीं है कि वे भी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के प्रकाश में अपने यहां पाठ्यचर्या नवीनीकरण करें। लेकिन राष्ट्रीय शिक्षा सलाहकार परिषद् से अनुमोदन के बाद यह अनुशंसा जरूर की जाती है कि राज्य भी पाठ्यचर्या का नवीनीकरण करें। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 आने के बाद कुछ राज्यों ने नवीनीकरण की पहल को हाथों-हाथ लेते हुए पाठ्यचर्या नवीनीकरण के प्रयास आरंभ किए। कुछ राज्यों ने अपनी राजनैतिक विचारधारा के तहत नई पाठ्यचर्या और नवीनीकरण के प्रयासों का विरोध भी किया। राजस्थान विरोध करने वाले राज्यों में से एक था। 2005 में पाठ्यचर्या आने के छः साल बाद भी कुछ राज्यों में पाठ्यचर्या नवीनीकरण के प्रयास चल रहे हैं और पुनः राजस्थान उनमें से एक है।

इसे दुर्भाग्य ही कहा जाएगा कि केन्द्र स्तर पर चली पाठ्यचर्या निर्माण की सघन प्रक्रिया और इसके नतीजे के तौर पर प्राप्त दस्तावेज से हमारे अधिकांश राज्य ज्यादा कुछ नहीं सीख पाए हैं। और जो सीखा है वह नई शब्दावली की तोता रटंत है। विभिन्न राज्यों में पाठ्यचर्या निर्माण के कार्य से जुड़े लोग इस दस्तावेज का हवाला इस कदर देते हैं जैसे हवाले भर से उनकी पाठ्यचर्या इसके अनुरूप बन जाएगी। इसमें प्रयुक्त शब्दावली का उनके द्वारा प्रयोग यह प्रकट करता है कि मानो ये शब्द स्वतः ही अर्थ का बयान करते हों। ये शब्दावली इतनी प्रचलित हो गई है कि इसके अर्थ पर प्रश्न उठाने और चर्चा करने के प्रयास निरर्थक-से लगते हैं और यह पूछना तो गुनाह-सा लगता है कि कक्षा-कक्षीय प्रक्रियाओं में इसके निहितार्थ क्या होंगे।

संयोग से मुझे चार राज्यों में चले/चल रहे पाठ्यचर्या नवीनीकरण के प्रयासों को थोड़ा-बहुत जानने का अवसर मिला है। केरल को छोड़कर शेष तीन राज्यों में पाठ्यचर्या निर्माण के प्रति गंभीरता के बजाय खानापूर्ति के प्रयास ही नजर आए हैं। इन राज्यों में पाठ्यचर्या निर्माण की प्रक्रिया बहुत ही सीमित लोगों और अनेक बार गोपनीयता बनाए रखने जैसी कोशिशों के बीच हुई हैं। हालांकि कुछ राज्यों ने अपने यहां विचार-विमर्श में गर्मजोशी से राष्ट्रीय स्तर के शिक्षा विशेषज्ञों को शामिल किया है लेकिन उनके ये प्रयास भी उनकी पूरी कवायद को बहुत दूर तक नहीं ले जा पाए हैं और नतीजे के तौर पर वही ढाक के तीन पात। क्योंकि वस्तुतः पाठ्यचर्या या इसके उपरान्त पाठ्यपुस्तक/शिक्षण सामग्री निर्माण एवं मूल्यांकन आदि के मुद्दों को संगत तरीके से पार चढ़ाने के लिए विशेषज्ञों की सतत भागीदारी की आवश्यकता होती है जिसे कुछ एक दिवसीय व्याख्यानों या दो-तीन दिवसीय कार्यशालाएं आयोजित करके अर्जित नहीं किया जा सकता। पाठ्यचर्या और उसके अनुरूप सामग्री निर्माण आदि कार्यों में जुटे लोगों की आवश्यक तैयारी जरूरी होती है और इसके लिए उस समूह के बीच सतत संवाद, पुनर्चिन्तन और समीक्षाएं जरूरी हैं। बिना इसके आनन-फानन में निपटाने के भाव से किए गए कार्य सार्थक अंजाम तक नहीं पहुंचेंगे।

यदि हम राज्यों में चल रहे पाठ्यचर्या नवीनीकरण के प्रयासों पर नजर डालें तो इस समस्या के कुछ सामान्य कारण दिखाई देते हैं। इस समस्या के अनेक कारणों में से पहला कारण राज्य सरकारों में लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को गंभीरता के साथ स्थापित करने में अरुचि और बेहतरी के लिए प्रतिबद्धता का अभाव है। यदि उक्त प्रसंग में राजस्थान के उदाहरण पर गौर करें तो करीब तीन साल पहले राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों की घटिया गुणवत्ता, समाज विरोधी मूल्यों और एक खास विचारधारा में शिक्षार्थियों को मतदीक्षित करने के प्रयासों का लगभग डेढ़ वर्ष तक शिक्षा से सरोकार रखने वाले एक समूह ने सतत विरोध किया। विरोध करने के बाद राज्य सरकार ने पुस्तकों की समीक्षा के लिए राजस्थान के तीन 'अज्ञात शिक्षाविदों' की एक समिति गठित की जिसे करीब 15 दिनों में कक्षा 1 से 12 तक की समस्त पाठ्यपुस्तकों की समीक्षा करके अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपनी थी। इस समिति ने गोपनीय तरीके से काम किया तथा रिपोर्ट सार्वजनिक भी नहीं किया और जो लोग पहले से पाठ्यपुस्तकों की आलोचना और विरोध में जुटे थे उनसे किसी तरह का सलाह-मशविरा किए बगैर, विरोध करने वाले समूह के एक सदस्य द्वारा राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों की आलोचना पर पूर्व में प्रकाशित एक पुस्तिका (अपूर्वानन्द - *'राजस्थान की पाठ्यपुस्तकों में जनसंहार'*) के आधार पर एक रिपोर्ट बनाई। इस पूरे प्रसंग में राज्य सरकार की कार्य प्रणाली की गंभीरता पर तो सवाल खड़े होते ही हैं साथ ही सवाल यह भी है कि किसी भी लोकतांत्रिक राज्य में सार्वजनिक जीवन से जुड़े मसलों पर प्रक्रियाओं की गोपनीयता बनाए रखने के क्या मायने हैं ?

इसी क्रम में राज्य सरकार ने आगे पाठ्यचर्या निर्माण के लिए एक 29 सदस्यीय समिति का गठन किया जिसे तीन महीने में पाठ्यचर्या बनाकर सरकार को सौंपनी थी। पाठ्यचर्या में जेण्डर संवेदनशीलता का दावा करने वाले इस समूह के सभी सदस्य पुरुष हैं और लगभग 95 प्रतिशत सदस्य उच्च जातियों के हैं। करीब सौ प्रतिशत सदस्य कॉलेज शिक्षा में प्राध्यापक या कॉलेज से सेवानिवृत्त प्राध्यापक हैं। अल्पसंख्यक वर्ग के मात्र एक सदस्य हैं। आरंभिक शिक्षा के किसी भी अध्यापक को पाठ्यचर्या निर्माण में नहीं जोड़ा गया है। साथ ही इस समिति में राजस्थान के किसी भी सुविज्ञ शिक्षाविद् तथा साहित्य, समाज विज्ञान एवं सामाजिक क्षेत्र से जुड़े जाने-माने व्यक्तियों को कोई स्थान नहीं दिया गया है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 के सिद्धान्तों का हर बात में हवाला देने के बावजूद राजस्थान से राष्ट्रीय पाठ्यचर्या एवं उसके अनुरूप विकसित होने वाली पाठ्यपुस्तकों में लगे करीब दर्जन भर लोगों में से भी इस समिति में किसी का प्रतिनिधित्व नहीं है। यह एक लोकतांत्रिक राज्य में सभी बच्चों के लिए पाठ्यचर्या बनाने वाली कैसी समिति है जो विभिन्न वर्गों को भागीदारी एवं प्रतिनिधित्व के अवसर ही नहीं देती ! क्या ऐसे समूह से राजस्थान के सभी बच्चों के लिए तीन महीने में एक बेहतर पाठ्यचर्या की उम्मीद की जा सकती है ?

दूसरा कारण, और यह कारण पिछले कुछ वर्षों से तमाम राज्यों में काफी मुखर है, राजकीय शैक्षिक संस्थानों पर राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय वित्तदाता संस्थाओं का बढ़ता कब्जा है (ये संस्थाएं पहले सिर्फ वित्तदाता संस्थाओं के तौर पर ही काम करती थीं लेकिन आजकल बिना जमीनी अनुभव के फील्ड में शैक्षिक कार्यक्रमों का सीधे क्रियान्वयन करने में जुटी हैं)। कोई भी संस्थान, यदि वे सक्षम हैं तो, राजकीय संस्थानों में उनकी मदद का स्वागत किया जाना चाहिए। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या और इसके अनुरूप विकसित की गई पाठ्यपुस्तकों में भी ऐसी सक्षम संस्थानों से भरपूर मदद ली गई है। लेकिन सवाल सक्षमता का है। आज के वक्त में राज्य स्तर पर पाठ्यचर्या और पाठ्यपुस्तकों के काम को निर्देशित करने वाली इन तमाम वित्तदाता संस्थाओं की ऐसी कोई तैयारी नजर नहीं आती। यहां तक कि कुछ संस्थाओं का तो शैक्षिक अनुभव भी नहीं के बराबर है। राजकीय संस्थानों में इनका दखल सिर्फ और सिर्फ इनकी आर्थिक सत्ता या सरकारों के साथ सांठगांठ के जरिए है और एक बार राजकीय संस्थाओं में प्रवेश पा लेने के बाद ये वहां की प्रक्रियाओं को अपनी तरह से संचालित करने वाले मठाधीश बनने की कोशिश करते हैं जो बहस की प्रकृति से लेकर लोगों की सहभागिता तक को प्रभावित करता है। वे शिक्षा के क्षेत्र में विशेषज्ञता को लाने का दावा तो करते हैं लेकिन विशेषज्ञता की उनकी अपनी निराली समझ है। शिक्षा के इन 'प्रबंधकों' और इनके द्वारा जुटाए गए भानुमति के कुनबे से किसी भी राज्य के बच्चों का भला होने वाला नहीं है।

किसी भी लोकतांत्रिक राज्य में इस तरह की घुसपैठ के क्या परिणाम हो सकते हैं, इसके कुछ उदाहरण तो मौजूद हैं लेकिन वक्त इन्हें और पुख्ता तौर पर साबित करेगा। लेकिन इतना जरूर कहा जा सकता है कि ये प्रयास लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के लिए घातक हैं क्योंकि ये संभावित व्यापक भागीदारी, विभिन्न मत रखने वाले लागों के बीच विचार-विमर्श के स्थान और लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को बाधित करते हैं और क्योंकि इनका सरोकार इनमें से किसी भी विचार के साथ नहीं है। इनका मकसद बस 'राज्यों की मदद करने' और 'बदलाव' का ताज पहनना है। इनका सरोकार परिवर्तन की दिशा से नहीं है कि वह किधर ले जाएगा और यह भी नहीं है कि इससे बच्चों का भला होगा।

तीसरा कारण, वह प्रवृत्ति है जिसमें शैक्षिक प्रक्रियाओं को एक-दूसरे से अलग-थलग करके देखा जाता है। अर्थात् पाठ्यचर्या को बाकी शैक्षिक प्रक्रियाओं से अलग करके देखना। इसके तहत पाठ्यचर्या के लिए एक समिति बना दी जाती है और वह स्वतन्त्र रूप से अपना काम करती है। पाठ्यपुस्तकों के लिए अलग समितियां बनाई जाती हैं और वे पाठ्यचर्या समिति से अलग स्वतंत्र रूप से अपना काम करती हैं। लेकिन इन दोनों के बीच किसी तरह के सेतु निर्माण का प्रयास नहीं किया जाता। सिद्धान्ततः समस्त शैक्षिक प्रक्रियाएं जुड़ी हुई हैं लेकिन इनका व्यवहार नहीं होता। संभवतया इस तरह के प्रयासों में इनके लिए पूर्वापर संबंध हो सकता है कि पहले पाठ्यचर्या निर्माण हो और फिर पाठ्यपुस्तकें निर्मित हों। लेकिन सभी इस सवाल से बचते रहते हैं कि क्या पाठ्यपुस्तकों के लिए चुनी गई विषयवस्तु और उस पर तैयार अभ्यास पाठ्यचर्या के सिद्धान्तों का पालन करते हैं ? क्या इस सामग्री में प्रयुक्त सीखने के सिद्धान्त पाठ्यचर्या में वर्णित सिद्धान्तों के अनुरूप हैं ? क्या मूल्यांकन की प्रक्रियाएं पाठ्यचर्या के अनुरूप हैं ? इन समस्त समस्याओं को ध्यान में रखकर एक बेहतर सामग्री का निर्माण समय और ऊर्जा की मांग करते हैं और न ही इस प्रक्रिया में जुटे लोगों से सीधे-सरल और बने-बनाए जवाबों की अपेक्षा होती है बल्कि पहले से स्थापित नजरिए की चट्टान को तोड़ना होता है।

पाठ्यचर्या निर्माण के संदर्भ में गौरतलब यह है कि पाठ्यचर्या और शेष शैक्षिक प्रक्रियाएं अभिन्न रूप से जुड़ी हुई हैं। उदाहरण के लिए, पाठ्यचर्या के सिद्धान्तों के आधार पर कोई भी व्यक्ति यह पूछ सकता है कि यदि पाठ्यचर्या विवेचनात्मक चिन्तन की बात करती है तो कौनसे अध्यायों में इसके लिए अवसर सृजित किए गए हैं और वे किस तरह के हैं? इसी तरह ज्ञान निर्माण में बच्चों की सक्रिय भागीदारी के बहुचर्चित सिद्धान्त का पाठ्यपुस्तकें और कक्षा-कक्षीय प्रक्रियाएं किस तरह पालन करती हैं ? क्या वास्तव में पाठ्यपुस्तकें इसके अनुरूप बच्चों को ज्ञान निर्माण का अवसर दे रही हैं ? या पाठ्यपुस्तक एक व्याख्यान का लिखित रूप मात्र हैं ? पाठ्यचर्या से संबंधित ये कुछ सवाल हैं जिन्हें उसकी संगति में देखना होगा। लेकिन मुख्यमार्ग के बजाय पगडंडियों पर चलने का नतीजा यह होता है कि शिक्षा प्रक्रियाओं में जुटे विभिन्न स्तर के लोगों के बीच किसी तरह की साझी समझ नहीं बन पाती। और परिणाम तमाम शिक्षा प्रक्रियाओं के बीच असंबद्धता होती है।

चौथा कारण, राज्य स्तर पर विशेषज्ञता को निर्मित करने से संबंधित है। कटु लगने के बावजूद सच यह है कि राज्यों में अभी इतने दीगर काम को पार चढ़ाने की विशेषज्ञताएं नहीं हैं। यह सही है कि विशेषज्ञता कहीं तैयार करके रखी हुई नहीं होती बल्कि उसे तैयार करना होता है, इसके लिए मंच उपलब्ध कराने होते हैं और दूर-दृष्टि के साथ निवेश भी करना पड़ता है। यह संभव है कि हरेक राज्य में हर विषय के विशेषज्ञ हों लेकिन उन्हें शिक्षा के काम के लिए एक मंच पर लाना भी एक बड़ा काम है। लेकिन कुशल नेतृत्व उन्हें एक जगह लाकर और शिक्षा के प्रति लम्बे उन्मुखीकरण के जरिए राज्य के लिए बेहतरीन विशेषज्ञता तैयार कर सकता है। लेकिन इसके लिए प्रयास करने होंगे और इसके लिए एक ऐसी प्रक्रिया को अपनाना होगा जो सघन और लम्बी हो। लम्बे बहस-मुबाहिसों से निकलकर ऐसा एक समूह तैयार हो सकता है जो एक साझी समझ पर पहुंचे और इसे उचित अंजाम दे। यह सब भी सरकारों की पहल पर ही संभव है क्योंकि वे ही इसके लिए समय और संसाधन लगा सकती हैं।

पाठ्यचर्या निर्माण की कोशिशें पहले भी हुई हैं और उनके निर्माण में तमाम लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं को अपनाने के दावे भी किए गए हैं। इसका एक उदाहरण राजस्थान में वर्ष 2000 में तैयार हुई पाठ्यचर्या है जिसका नाम 'जनसम्मत पाठ्यचर्या' रखा गया था। शिक्षा के क्षेत्र में इस तरह के दस्तावेजों को एकत्रित करते रहने की कोई वजह नहीं है। दृष्टिविहीन और निरर्थक भाषा से भरा यह एक ऐसा दस्तावेज है जो पाठकों के मन में किसी तरह का अर्थ नहीं बनाता बल्कि इसकी निरर्थकता एक खीझ उत्पन्न करती है। वह दस्तावेज इस बात का उदाहरण है कि लोकतांत्रिक प्रक्रियाएं भी कुशल और दृष्टि संपन्न नेतृत्व के बिना किस तरह निरर्थक साबित हो सकती हैं। अतः पुनः ऐसे दस्तावेजों के आने से बेहतर है कि दस्तावेज आएं ही नहीं। इनके बनते रहने से बच्चों और शिक्षकों का किसी तरह भला नहीं होने वाला। जब तक शैक्षिक नीति निर्माण या शैक्षिक प्रक्रियाओं को आकार देने वाले किसी भी निर्णय में सभी वर्गों की भागीदारी, दूर-दृष्टि, पारदर्शिता के साथ शिक्षा एवं शिक्षा और समाज के रिश्ते की समझ, भावी समाज का सपना तथा शिक्षणशास्त्र की समझ को दस्तावेज का आधार नहीं बनाया जाएगा तब तक लोकतांत्रिक प्रक्रियाओं के नाम पर निरर्थक कवायदें होती रहेंगी लेकिन किसी तरह के सार्थक शैक्षिक अनुभव देने वाले सार्थक प्रयास मुमकिन नहीं हो पाएंगे। जिस रीति-नीति से पाठ्यचर्याएं बन रहीं हैं यदि ये उसी तरह बनती रहेंगी तो हम एक ही जगह पर कदमताल करते रहेंगे। इससे बच्चों का कुछ भी भला नहीं होने वाला। ◆